पिछड़े और दलित भारतीय मुसलमानों का सच

शोध निर्देशक

डॉ० फरीद आलम,

सहायक प्राध्यापक, इतिहास विभाग,
जवाहर लाल नेहरू कॉलेज डेहरी ऑन सोन
वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा

शोधार्थी

फजल अहमद,

असिस्टेंट प्रोफेसर, इतिहास विभाग,
ए० एस० कॉलेज, विक्रमगंज
(रोहतास)
वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा

पसमान्दा मुसलमान राजनीति में तेजी से उभरने वाली एक नयी प्रवृत्ति है। बाबरी मस्जिद के ध्वंस के बाद जिन राजनीतिक परिप्रेक्ष्यों ने मुसलमान राजनीति का चरित्र तय किया, उनमें यह विमर्श सबसे प्रमुख है। मुसलमानों में मौजूद जाति प्रथा और अन्दरूनी विरोधाभासों को आधार बनाकर आन्तरिक लोकतन्त्र की माँग करने वाला यह विमर्श मुसलमानों की पिछड़ी जातियों को हिन्दू और सिक्ख पिछड़ों की तर्ज पर ही संविधानसम्मत सुविधाएँ दिये जाने का पक्षधर है। 2006 में सच्चर आयोग की रपट के प्रकाशन के बाद से मुसलमानों के भीतर का पिछड़ा समाज एक आधिकारिक श्रेणी भी बन गया है। रंगनाथ मिश्र कमीश्न (2007) और अल्पसंख्यक आयोग की विभिन्न रपटें इस तथ्य को उजागर करती हैं कि आरक्षण के सवाल और मुस्लिम पिछड़ेपन की समस्याओं को पिछड़े मुसलमान के प्रश्न से अलग करके नहीं देखा जा सकता है। पिछड़े मुस्लिम शब्द का चलन कोई खास पुराना नहीं है, लेकिन मुसलमानों के भीतर होने वाली जाति–राजनीति, विशेषकर पिछड़ी जातियों के लामबन्द होने की प्रक्रिया, आजादी से बहुत पहले औपनिवेशिक भारत में शुरू हो गयी थी। वास्तव में मुसलमान समाज भी जाति–प्रथा से संचालित होता रहा है।

भारत में इस्लाम के प्रसार की दो प्रवृत्तियाँ रही हैं जिनके आपसी रिश्तों से एक जटिल जाति–व्यवस्था का जन्म हुआ। पहली प्रवृत्ति मुस्लिम समुदायों का मध्य एशिया से आकर भारत में बसने से सम्बन्धित है। ऐतिहासिक खोजें, विशेषकर हाल में हुए विश्लेषणों से यह स्पष्ट हुआ है कि अनेक मुस्लिम समुदाय एक सतत् चलने वाली अत्यन्त धीमी प्रक्रिया के तहत कई शताब्दियों तक भारत में आकर बसते रहे। यह प्रक्रिया इतनी धीमी थी कि इसके कारण तत्कालीन समाज में कोई आमूल सामाजिक–सांस्कृतिक परिवर्तन नहीं हुआ। इस्लाम के सिद्धान्तों का आत्मसातीकरण होता चला गया। रिचर्ड ईटन का मध्यकालीन बंगाल पर किया गया शोध बताता है कि हिन्दुओं द्वारा इस्लाम अपनाने के पीछे न तो

ISSN2277-3630(online),Published by International journal of Social Sciences & Interdisciplinary Research., under Volume: 14 Issue:11 in Nov-2025 https://www.gejournal.net/index.php/IJSSIR

Copyright (c) 2025 Author (s). This is an open-access article distributed under the terms of Creative Commons Attribution License(CCBY).To view a copy of this license,visithttps://creativecommons.org/licenses/by/4.0/

सामाजिक न्याय के विमर्श जैसा कुछ था, और न ही कोई खास राजनीतिक ललक। धार्मिक विविधताओं से भरे इस भौगोलिक सांस्कृतिक क्षेत्र में मौजूद बहुत से अन्य धार्मिक विकल्पों में से एक विकल्प इस्लाम भी था। इस्लाम का चयन न तो पुराने धार्मिक सन्दर्भों को छोड़कर किया जा सकता था और न ही इस्लाम के भीतर मौजूद एके"वरवाद जैसी आध्यात्मिक संरचनाओं को खारिज करके। ऐसे में जिन हिन्दुओं ने इस्लाम स्वीकार किया उन्होंने न तो अपनी स्थानीय रीतियों को छोड़ा और न ही एके"वरवाद को नकारा। दिलचस्प बात यह है कि इस्लाम का प्रसार निम्न और मध्य जातियों में ज्यादा हुआ। इसका सीधा कारण यह था कि इन जातियों में उच्च कही जाने वाली जातियों की तुलना में रीति–रिवाजों और आस्थाओं में अपेक्षित खुलापन था। इन जातियों के लिए इस्लामी सिद्धान्तों का जातीकरण सम्भव था। इस तरह हरेक जाति ने, जो बाद में मुस्लिम बिरादरियाँ कही जाने लगीं, अपने–अपने ढंग से इस्लामी आस्थाओं को परिभाषित किया।

मध्य एशिया से आए विविध मुसलमान समुदायों और भारतीय मुस्लिम बिरादरियों के आपसी रिश्तों ने मुस्लिम जाति प्रथा को जन्म दिया। दोनों तरह की सामाजिक संरचनाओं के भीतर भी अनेक विविधताएँ थीं। उदाहरण के लिए मध्य एशियाई और अरब से सम्बन्ध रखने वाले समुदायों के बीच भी उतनी ही दूरियाँ थीं, जितनी कि मुस्लिम बिरादरियों में। हालाँकि मध्य एशियाई समुदाय शेख, मुगल और पठान शासक वर्ग में बदल गये, परन्तु यह कहना ठीक नहीं होगा कि उनके राजनीतिक वर्चस्व से ही जाति–व्यवस्था में ऊँच–नीच तय हुई। मुस्लिम जाति–व्यवस्था में ऊँच–नीच की शुरुआत पर अभी तक कोई ऐतिहासिक विश्लेषण नहीं किया गया है। ऐसे में मध्ययुगीन साहित्य, विशेषकर मुस्लिम शासकों द्वारा लिखवाया गया साहित्य ही एक सम्भव स्रोत है ।

'तुजुक–ए–फिरोजशाही' से लेकर 'आइने अकबरी' तक जैसे ग्रन्थ हमें बताते हैं कि मुस्लिम समुदायों में जाति और कबीला पहचान के दो प्रमुख पैमाने हैं। ऐसे में समुदाय का पेशा और वर्चस्व के आधार पर उनके सामाजिक मूल्य तय हो सकते थे। यही वजह है कि अठारहवीं और उन्नीसवीं सदी में कुछ समुदायों के लिए 'अशराफ' (जो शरीफ हों) कुछ के लिए 'अजलाफ' (जलील से सम्बद्ध) और कुछ के लिए 'अरजाल' शब्द प्रयुक्त होता है।

यहाँ दो स्पष्टीकरण जरूरी हैं। पहला, इन श्रेणियों का इस्तेमाल औपनिवेशिक युग के शुरुआती दौर में खूब होता दिखता है। इसलिए मुस्लिम जाति–विमर्श और औपनिवेशिक आधुनिकता का सम्बन्ध जातियों के ऊँच–नीच के विश्लेषण में एक अहम कड़ी है। इसका स्पष्टीकरण मुस्लिम समाजों में

ISSN2277-3630(online),Published by International journal of Social Sciences & Interdisciplinary Research., under Volume: 14 Issue:11 in Nov-2025 https://www.gejournal.net/index.php/IJSSIR
Copyright (c) 2025 Author (s). This is an open-access article distributed under the terms of Creative Commons Attribution License(CCBY).To view a copy of this license,visithttps://creativecommons.org/licenses/by/4.0/

परम्परागत पेशों से ताल्लुक रखता है। पेशों की ऊँच–नीच अशराफ और अरजाल श्रेणियों का अवधारणात्मक क्षेत्र तय करती है। मसलन नाई, जुलाहे और बढ़ई का काम करने वाले मुसलमान, अजलाफ श्रेणी में माने गये, जबकि मध्य एशियाई समुदाय जो कि मूलतः व्यापार से सम्बन्ध रखते थे, अशराफ बन गये। हिन्दू जाति–व्यवस्था की तरह यहाँ भी पेशा जाति बनता चला गया। अशराफ/ अजलाफ़ की दूरियों का सबसे सटीक चित्रण उन्नीसवीं सदी की रचनाओं से मिलता है। सैयद अहमद खाँ से लेकर कई शीर्ष के उलेमा प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष तौर पर मुस्लिम जाति–व्यवस्था के समर्थक बन गये। सैयद अहमद ने तो जुलाहों को बदजात तक कहा और 1857 के सिपाही विद्रोह का जिम्मेदार ठहराया। इस तरह इस्लाम की जाति–व्यवस्था का आधुनिक राजनीति से सीधा रिश्ता जुड़ गया। बीसवीं सदी के शुरुआती दशकों में पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार में जातिगत संगठन विशेषकर पिछड़े मुसलमानों के संगठन बनने शुरू हुए। 1930 के दशक में बनी मोमिन क्रॉफ्रेंस इसका एक अहम उदाहरण है। कॉफ्रेंस मूलतः जुलाहा समुदाय से सम्बन्धित थी और इसका रुझान काँग्रेस की समन्वयकारी राजनीति की तरफ था। यही कारण था कि आजादी के बाद मोमिन कॉफ्रेंस काँग्रेस के प्रसार में पूरी तरह छुप गयी।

साठ और सत्तर के दशकों में मुसलमानों की पिछड़ी जातियों का दायरा सामाजिक–सांस्कृतिक क्षेत्रों तक सीमित रहा। इसका एक बड़ा कारण भारतीय संवैधानिक विमर्श द्वारा मुसलमानों को एक राजनीतिक इकाई मानने से भी जुड़ा था। उदाहरण के लिए 1953 में गठित काका कालेलकर आयोग ने यह तो माना कि मुसलमानों की कुछ जातियाँ पिछड़ी हैं, लेकिन आयोग ने इन जातियों को हिन्दू और सिक्ख पिछडों के साथ जोड़कर नहीं देखा। यहाँ तक कि 1959 के एक अध्यादेश से यह भी तय हो गया कि अनुच्छेद 341 के तहत केवल हिन्दुओं और सिक्खों मौजूद दलित जातियाँ ही आरक्षण का लाभ उठा सकती हैं। अन्य भारतीय मजहब (खासकर इस्लाम और ईसाई मत) इस सूची से बाहर रखे गये। इस प्रकार मुसलमानों में जाति एक संकीर्ण राजनीतिक श्रेणी के तौर पर पुनः स्थापित हो गयी। 1980 के दशक में मण्डल आयोग ने एक नयी शुरुआत की। आयोग ने मुसलमानों के पिछड़े तबकों को अन्य पिछड़े वर्ग की श्रेणी में रखकर आरक्षण देने की सिफारिश की। इस पहल ने मुसलमानों के भीतर चल रहे जातिगत अन्तर्विरोधों को एक नया उछाल दिया और बाबरी मस्जिद का विध्वंस होने तक 'पिछड़े मुस्लिम' नामक एक नये राजनीतिक विमर्श का उदय हुआ।

1990 में एजाज अली ने जो स्वयं अंसारी समुदाय से थे, इस शब्द का प्रयोग किया । अली का आन्दोलन काफी तेजी से लोकप्रिय हुआ और शीघ्र ही पिछड़े मुस्लिम का सवाल उठाने वाले

ISSN2277-3630(online),Published by International journal of Social Sciences & Interdisciplinary Research., under Volume: 14 Issue:11 in Nov-2025 https://www.gejournal.net/index.php/IJSSIR
Copyright (c) 2025 Author (s). This is an open-access article distributed under the terms of Creative Commons Attribution License(CCBY).To view a copy of this license,visithttps://creativecommons.org/licenses/by/4.0/

कई संगठन सामने आए। अली ने स्वयं 1992 में ऑल इंडिया बैकवार्ड मुस्लिम मोर्चा की स्थापना की। अली का मत है कि सैयदवाद से ग्रस्त मुस्लिम समाज को हिन्दू समाज की तरह सुधार की जरूरत है। अली का मानना है कि अन्य पिछड़ी श्रेणी में मुस्लिम पिछड़े समुदायों के लिए पृथक आरक्षण एक शुरुआत हो सकता है।

1998 में अली अनवर की पुस्तक श्मसावात की जंगश ने विमर्श को पसमान्दा नामक नयी अवधारणा से नवाजा। अनवर ने बिहार की मुस्लिम जाति–व्यवस्था का ऐतिहासिक विश्लेषण करके नीची जाति के मुसलमानों को एक राजनीतिक श्रेणी के तौर पर स्थापित किया। एजाज अली के विपरीत अनवर मानते हैं कि पिछड़े मुसलमानों का अलग से आरक्षण पसमान्दा मुसलमानों के संघर्षों को साम्प्रदायिक बना देगा। इसलिए अन्य पिछड़े वर्ग की पहचान अगड़ी और पिछड़ी जातियों के आधार पर ही होनी चाहिए ताकि अति पिछड़ी जातियाँ, चाहे वे हिन्दू हों या मुसलमान, आरक्षण का लाभ उठा सकें। अनवर अनुच्छेद 341 में संशोधन के पक्षधर हैं और उनका मत है कि मुस्लिम पिछड़ों को हिन्दू पिछड़ों की तरह ही आरक्षण मिलना चाहिए। अनवर मुसलमानों में अन्तर्जातीय विवाह के भी हिमायती हैं। पिछड़े मुस्लिम विमर्श को तथाकथित मुस्लिम रहनुमाओं का भी समर्थन हासिल है, हालाँकि परम्परागत मुस्लिम राजनीति अब भी इस सवाल को मुसलमानों का आन्तरिक मुद्दा मानने के ही पक्ष में है।

संदर्भ–

5– शंकर शरण, पिछड़े क्यों मुसलमान, 2020

2– एस० एस० सईद, भारतीय राजनीतिक व्यवस्था

1– डॉ. रामदेव शर्मा, आरक्षण तनाव और समाधान, 2000

3– डॉ० वीरेन्द्र सिंह यादव, भारतीय दशा और दिशा 2010

4– डॉ० वीरेन्द्र सिंह यादव, 21वीं सदी में मुसलमान 2010

6– सर सच्चिदानन्द सिन्हा, पॉलिटिकल इलिट्स ऑफ बिहार, शशि शेखर झा

ISSN2277-3630(online),Published by International journal of Social Sciences & Interdisciplinary Research., under Volume: 14 Issue:11 in Nov-2025 https://www.gejournal.net/index.php/IJSSIR

Copyright (c) 2025 Author (s). This is an open-access article distributed under the terms of Creative Commons Attribution License(CCBY).To view a copy of this license,visithttps://creativecommons.org/licenses/by/4.0/